



मुगलकाल में मुद्रा प्रणाली एवं अर्थव्यवस्था का विकास

सोनी कुमारी

शोधार्थी

स्नातकोत्तर इतिहास विभाग

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध-सार

मध्यकालीन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन उपभोग तक ही सीमित था। विनिमय के लिए नहीं था तथा मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था व व्यापारिक वस्तुओं का उत्पादन ब्रिटिश काल की ही देन है—यह मत अब स्वीकार्य नहीं है। आज ऐसे बहुत से साक्ष्य उपलब्ध हैं जिनके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सत्रहवीं शताब्दी के मुगल-साम्राज्य के अधिकांश भागों में एक विकसित बाजार-व्यवस्था कायम थी। यह व्यवस्था व्यापारिक पत्र-व्यवहार, बीमा पद्धति तथा बैंकिंग प्रणाली पर आधारित थी। मुद्रा-व्यवहार एवं चलन की व्यापकता से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्याज वृत्ति तथा ऋण आदि की सुविधाएँ भी अपने विकसित रूप में विद्यमान नहीं होंगी। इन सभी विशेषताओं के बावजूद भी सत्रहवीं शताब्दी में भारत में पूंजीवाद का विकास नहीं हुआ जिसका मुख्य कारण यह था कि तत्कालीन वाणिज्य हस्त शिल्प उत्पादन में अपरिवर्तित तरीके पर ही आधारित था।

शब्दकुंजी : अर्थव्यवस्था, पूंजीवाद, वाणिज्य, वृत्ति तथा ऋण आदि

भारत में मुद्रा-प्रधान अर्थव्यवस्था का विकास मुगलों के आगमन के बहुत समय पूर्व ही हो चुका था। यद्यपि मुगलों के होनेवाले विकास के समय स्वरूप के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में कुछ विशेषताएँ अवश्य रही होंगी। इनमें से एक तथ्य यह था कि इस काल में आगरा, देहली, लाहौर, अहमदाबाद तथा ढाका आदि नगरों का तेजी से विकास और विस्तार हुआ।¹ बर्नियर के अनुसार देहली पेरिस से कम नहीं थी तथा आगरा देहली से भी बड़ा था। राल्फ फिन्च ने लिखा है कि आगरा तथा फतेहपुर सिकरी दोनों ही लंदन से बड़े थे। नगरों के विकास तथा आकार में वृद्धि के कई कारण थे—जैसे काश्तकारों का काश्त छोड़कर नगरों की ओर पलायन। यह प्रक्रिया काश्तकारों के दरिद्र हो जाने तथा काश्तकारों पर राज्य की मांग का दबाव बढ़ जाने के कारण ही घटित नहीं हुई। काश्तकार नगरों की बेहतर रहन-सहन की परिस्थितियाँ व नकद वेतन आदि की व्यवस्था से भी आकर्षित हुए।²

दूसरी मुख्य विशिष्टता यह थी कि इस काल में मुगल शहजादों तथा उमरा वर्ग में वाणिज्य वृत्ति की प्रवृत्ति बढ़ी। सत्रहवीं शताब्दी के यूरोपीय तथा फारसी ग्रंथों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अमीरों तथा शाही परिवार के सदस्यों, जिनमें बादशाह, शहजादे—शाहजादियां तथा हरम की अन्य महिलाएँ शामिल थीं। व्यापारिक क्रियाकलापों से जुड़े थे। जहाँगीर, नूरजहाँ तथा शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) के अपने निजी जहाज थे जो सूरत तथा लाल सागर के मध्य चलते थे। शहजादी जहाँआरा के भी अपने निजी जहाज थे जिनसे डचों तथा अंग्रेजों के जहाजों को माल पहुंचाने का कार्य किया जाता था। दारा एवं स्वयं औरंगजेब का भी अपना जहाजी बेड़ा था जिसमें लाल सागर के बंदरगाहों तथा अफ्रीका के तटीय इलाकों में व्यापार किया जाता था। महत्वपूर्ण अमीरों जैसे मीर जुमला, आसफ ख़ाँ आदि के भी अपने जहाज थे तथा वे भी व्यापारिक गतिविधियों में लगे थे। इस प्रकार यद्यपि उमरा वर्ग तथा राज्य की आय का मुख्य साधन स्रोत अभी भी भू-उत्पादन ही था, किंतु वाणिज्य भी उनकी आय का एक साधन बन गया था।³

मुद्रा-आधारित अर्थव्यवस्था का विकास भी विकास भी मुगलों की राजस्व नीति का ही परिणाम था। अकबर के काल में ही काश्तकारों के उत्पादन अतिरिक्त का अधिकांश भाग नगद ही वसूल किया जाता था। इस प्रवृत्ति के कारण ही सुस्थापित नकद-चुनौती या नकदी अभिबंध संभव हो पाया। इस कारण मुद्रा चलन की व्यापकता में भी वृद्धि हुई। मुद्रा-चलन की व्यापकता तथा मात्रा का अनुमान लगाना कठिन था।³ विलियम हॉकिन्स के विवरण के अनुसार जहाँगीर के शासनकाल के आरंभिक वर्षों के लगभग 250 करोड़ रुपये चलन में थे। अबुल फजल ने अपनी कृति आइने अकबरी ने साम्राज्य की अनुमानित आय 90 करोड़ रुपये आँकी है। किंतु चांदी के मूल्य में गिरावट तथा दकनी राज्यों में मुगल साम्राज्य में विलय के पश्चात सत्रहवीं शताब्दी के अंत में कुल हासिल (वास्तविक आय) का परिणाम 250 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि मुगल साम्राज्य तत्कालीन विश्व के ऐसे देशों में से एक था जहाँ की मुद्रा व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती थी। यहाँ पर तीन स्थान की धातुओं (सोने की मुहर, चांदी के रूपया एवं तांबे के दाम) के सिक्के चलन में थे, जिनकी एकाग्रता तथा शुद्धता सराहनीय है। चांदी के सिक्के-रूपया इस व्यवस्था के आधार थे।⁴

मुद्रा-टंकण के इतिहास में शेरशाह का महत्वपूर्ण स्थान था। उसने एक ऐसी मुद्रा-प्रणाली की स्थापना किया जो खोटरहत थी। चांदी के रूपये के अतिरिक्त शुद्ध सोने तथा चांदी के सिक्के चलाने में भी शेरशाह ने सराहनीय प्रयास किया। किंतु वस्तुतः अकबर के काल में ही एक सुविकसित मुद्रा प्रणाली की स्थापना हुई। इस प्रणाली का मुख्य आधार रूपया था जिसका वजन 1/8 भरी (डेढ़ रती का एक वजन 'ग्रेन') था। अकबर के उत्तराधिकारियों द्वारा भी इसी वजन के सिक्के ढलवाए जाते रहे। अकबर के उत्तराधिकारियों द्वारा भी इसी वजन के सिक्के ढलवाए जाते रहे। जहाँगीर ने कुछ समय तक चांदी के अतिरिक्त अन्य धातुओं व अधिक वजन के सिक्कों का प्रचलन भी किया। किंतु अंततः औरंगजेब के

अन्तर्गत पहले के सामान ही वजन का रूपया जारी किया गया। केवल उसकी मात्रा में 2 भरी की वृद्धि की गई।⁵

मुगलों की मुद्राओं का प्रचलन राज्य द्वारा नियंत्रित टकसालों के माध्यम से किया जाता था। ऐसे टकसाल पूरे साम्राज्य में स्थित थे। अबुल फजल के अनुसार 1595 ई० में लगभग 42 टकसालों में सोने की ढलाई की गई। 14 टकसालों में चांदी का रूपया एवं 4 टकसालों में सोने की मुहरें ढाली गई। औरंगजेब के काल में रूपयों की ढलाई के परिणाम में वृद्धि हुई जिसका कारण मुख्यतः साम्राज्य के आकार में वृद्धि हुई। साथ ही इस काल में टकसालों की मात्रा में वृद्धि हुई। इरफान हबीब के अनुसार पूरी शताब्दी पर्यन्त रूपये के वजन में एकरूपता बनाए रखने का श्रेय मुगल बादशाह को ही जाता है। यह प्रशासन की उल्लेखनीय उपलब्धि थी।

मुगल साम्राज्यकालीन टकसाल केंद्रीय नियंत्रण के अंतर्गत होते हुए भी ढलाई के क्षेत्र में इस हद तक स्वतंत्र था कि कोई भी व्यक्ति वहाँ चांदी ले जाकर सिक्के ढलवा सकता था। सिक्के में कुछ कटौती की जाती थी। प्रत्येक सिक्के पर टकसाल का नाम तथा ढलाई का वर्ष अंकित होता था। यदि सिक्का ताजा (नया ढला हुआ) होता था तो उसका पूरा मूल्य मिलता था जबकि चालानी सिक्कों चलन किया प्रयोग में आ रहे सिक्के में आंशिक कटौती की जाती थी। पूर्ववर्ती शासनकाल के दौरान ढले हुए सिक्कों पर, जो खजाना कहे जाते थे। कटौती की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक थी। कटौती की मात्रा ढलाई शुल्क से अधिक नहीं होती थी।⁶

बड़े-बड़े सौदे के संबंध में नकद मुद्रा के अतिरिक्त ऋण की भी व्यवस्था होती थी। इस संबंध में यूरोप के सामान ही हुण्डियों की भी व्यवस्था होती थी। इन्हें हुण्डवी भी कहा जाता था।

बैंकिंग प्रणाली

मुगलों के अन्तर्गत विकसित बैंकिंग प्रणाली का मूल्यांकन मुद्रा के व्यापक प्रसार और चलन के संदर्भ में ही करना चाहिए। भू-राजस्व की नकद वसूली का अर्थ था। इसी कारण प्रत्येक गाँव में सर्राफा के वर्ग का उदय हुआ। ट्रैवर्नियर का कथन है— भारत में वह गाँव वास्तव में बहुत छोटा होना चाहिए जहाँ पर सर्राफ मौजूद नहीं है। ये बैंकर का कार्य भी करते थे। सर्राफों का यह वर्ग प्रत्यक्ष रूप से लेने देन व क्रय-विक्रय में भाग लेता था। एल० सी० जैन की कृति से सिद्ध होता है कि आधुनिक भारत में सर्राफों का व्यवसाय जाति-व्यवस्था के प्रभाव से बच नहीं सका है तथा इस व्यवसाय का फायदा केवल कुछ वाणिज्य संलग्न समुदायों द्वारा ही उठाया गया है। यह कहना गलत न होगा कि मुगल-काल में भी यही स्थिति थी। यद्यपि इस बारे में स्रोत ग्रंथों में एवं समसामयिक साहित्य में कोई वक्तव्य प्राप्त नहीं होता। समसामयिक विवरण के अनुसार सर्राफ का मुख्य कार्य मुद्रा की परख करना था। इसका कारण यह था कि टकसालों में चांदी आदि किसी भी धातु को देकर सिक्का ढलवाने की सुविधा थी। ऐसी दशा में परख करना आवश्यक था। सर्राफ मुद्रा की शुद्धता की परख करता था, क्योंकि कालांतर में मुद्रा के

मूल्य में कमी आ जाती थी और सर्राफ को दस दशा में उसका मूल्य निर्धारित करना होता था अर्थात् उसकी कटौती की दर क्या होगी। इस कार्य के लिए वह सिक्कों के 1/30 या 14/16 प्रतिशत की दर से शुल्क लेता था। सिक्के के खोट की मात्रा की परख करने की उनकी कुशलता के कारण बहुत सर्राफ टकसालों से संबद्ध रहते थे। वहाँ वे पुरानी मुद्राओं को दोबारा ढलवाने के लिए भी ले जाते थे। खजाने पुरानी मुद्राओं को भी इसी उद्देश्य से खरीद लेते थे। विदेशों से चांदी के मुख्य खरीददार वे ही थे।⁷

सर्राफों का एक कार्य मुद्रा बदलने व लेन-देन आदि के माध्यम से मुद्रा को चलन में बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहना था, किंतु दक्कन में स्थानीय सरकारों द्वारा विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन किया जाता था। यह स्थिति सर्राफों के लिए फायदे की थी, क्योंकि वे इन सिक्कों को बदलकर अपना शुल्क वसूल करके फायदा उठाते थे। व्यापारिक लेन-देन में चूँकि रूपये ही माध्यम था, अतः सर्राफों का कार्य रूपयों के सिक्कों के नये सिक्कों में बदलने का कार्य बहुधा करते थे। कुछ सर्राफों द्वारा तो सांकेतिक मुद्रा भी चलाई जाती थी। 1665-66 में जब ताँबे की कमी के कारण ताँबे के दाम का प्रचलन कम हो गया तो उस स्थिति में अहमदाबाद के सर्राफों ने अपनी-अपनी सांकेतिक मुद्राएँ जारी की और उन्हें ऊँची दरों पर बेचा। ऐसी स्थिति में विवश होकर सरकार को कम मूल्य के ताँबे के सिक्कों (दाम) को 4 जारी करना पड़ा।

मुद्रा को परखने तथा बदलने के अतिरिक्त सत्रहवीं शताब्दी के सर्राफों द्वारा हुण्डी भी जारी की जाती थी और उन को छुड़ाया भी जाता था व इस प्रकार कटौती मूल्य लिया जाता था। हय हुण्डी की व्यवस्था आज भी प्रचलित है।⁸ एल० सी० जैन के अनुसार हुण्डी या हुण्डवी एक लिखित आज्ञापत्र होता है जिस पर किसी प्रकार की शर्त नहीं होती है। यह आज्ञापत्र किसी एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को मांगे जाने पर अदायगील की जाती है। हुण्डी की इस आधुनिक परिभाषा को मुगलकालीन हुण्डियों के बारे में भी लागू किया जा सकता है। अंतर केवल इतना है कि जहाँ आधुनिक काल में हुण्डी का प्रयोग अल्प समय के लिए उठाए जाने वाले ऋणों के लिए किया जाता है, जिनकी अदायगी दूसरे स्थान पर होती है वहाँ मुगलकाल में हुण्डी का प्रयोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर रकम प्रेषित करने के लिए भी किया जाता था। इनके द्वारा आधुनिक चौक तथा ड्राफ्ट की सुविधाएँ भी प्राप्त होती थी।⁸ अबुल फजल तथा सुजान राय भण्डारी का कहना है कि हुण्डियों का मुख्य उद्देश्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैसा भेजना था। हमें ज्ञात होता है कि अगर कोई यात्रा की असुविधा, खतरों तथा व्यय से बचना चाहता था तो सर्राफ के पास जाकर अपनी रकम जमा करा देता था। उसके बदले में सर्राफ उसे एक हुण्डी देता था जो सर्राफ के उस स्थान विशेष के एजेंट या कारिन्दे के नाम संबोधित होती थी। हुण्डी में लिखित राशि संबद्ध व्यक्ति को प्रदान की जाती थी। अबुल फजल के अनुसार इस प्रकार हुण्डियाँ अदायगी के लिए आज्ञापत्र थीं। कोई मोहर या हस्ताक्षर न होते हुए भी वे अत्यंत महत्वपूर्ण थीं और इनकी बड़ी साख थी। रकम की अदायगी बड़ी पाबंदी के साथ की जाती थी।⁹

इंग्लिश फ़ैक्ट्री रिकार्ड्स में यत्र-तत्र होनेवाले संदर्भों से सर्राफों द्वारा हुण्डी जारी करने के शुल्क के बारे में कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है (सत्रहवीं शताब्दी में)। विभिन्न स्थानों पर हुण्डी द्वारा रकम की अदायगी से संबंधित शुल्क इस प्रकार था : देहली से आगरा 1 प्रतिशत, बुरहानपुर से अहमदाबाद 2.5 प्रतिशत, थट्टा से अहमदाबाद 1 प्रतिशत, अहमदाबाद से खम्भात 7/10 प्रतिशत, सूरत से बड़ोदा 7/8 प्रतिशत तथा आगरा से अहमदाबाद प्रतिशत से कुछ अधिक। यह शुल्क नियम नहीं था अर्थात् इसकी दरों में बराबर वृद्धि होती रहती थी। इरफान हबीब के अनुसार दरों से उतार-चढ़ाव संभवतः दो विशिष्ट स्थानों के मध्य अदायगी की रकम की मात्रा में अनुपात में होता था। मुगल-साम्राज्य के व्यापक विस्तार की स्थिति में बहुधा अधिकारियों को निजी तौर पर तथा प्रशासनिक स्तर पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भारी मात्रा में रकम भेजने की बराबर आवश्यकता पड़ती थी। वह कार्य भी सर्राफों के माध्यम से ही किया जाता था। इस तथ्य की पुष्टि के लिए बहुत से साख्य उपलब्ध हैं। सरकारी अफसरों द्वारा दूसरे स्थानों को भेजी जानेवाली रकम व्यापार में प्रयुक्त होनेवाली रकम की मात्रा से अधिक नहीं तो बराबर अवश्य थी।

17वीं शताब्दी में हुण्डियों का प्रयोग रकम भेजने के अलावा ऋण की व्यवस्था के लिए भी होता था। ऐसा मुख्यतः व्यापारियों द्वारा ही किया जाता था। इन हुण्डियों को बहुधा सर्राफा द्वारा चुकाने वाले या हुण्डी धारक इन दोनों से किसी से भी कम दामों पर खरीद लिया जाता था। इस प्रकार सर्राफ ने केवल हुण्डी जारी करते समय लाभ उठाते थे बल्कि इस विशिष्ट स्थिति में वे दुकान करनेवाले से भी लाभ उठाते थे। ट्रैवर्नियर ने सूरत से जारी की गई विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग दरें थी : लाहौर में प्रतिशत, आगरा में से 5 प्रतिशत, अहमदाबाद में 1 प्रतिशत तक, बुहरानपुर में से 3 प्रतिशत तक, ढाका में 10 प्रतिशत तथा पटना में 7 से 8 प्रतिशत आदि। ट्रैवर्नियर के विवरण के आधार पर इरफान हबीब का मत है कि कटौती जैसा कि ट्रैवर्नियर द्वारा उल्लेख किया गया है। संभवतः उन हुण्डियों पर होती थी जो महत्वपूर्ण व्यापारों में संबंध रखती थी। कटौती या शुल्क की मात्रा आदेशिती के ऋण के अनुरूप घटती रहती थी।

कटौती में कई प्रकार के शुल्क शामिल थे। इस स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए शुल्क के लिए शुल्क के अतिरिक्त इसमें हुण्डी की राशि से आनेवाला ब्याज भी शामिल रहता था। जैसा कि ट्रैवर्नियर का कथन है, यह अदायगी लगभग दो महीनों में होती थी। इसमें उन वस्तुओं का बीमा-शुल्क भी शामिल होता था जिनके एवज में हुण्डी ली गई हो। उपर्युक्त विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि व्यापारियों द्वारा इस प्रकार ली जाने वाली हुण्डियों को जोखिम हुण्डी कहा जाता था जिसके साथ कुछ शर्तें रहती थीं। एल०सी० जैन के शब्दों में इन शर्तों के अनुसार यदि बीच में वे वस्तुएँ जिनके एवज में ऋण लिया गया है, खो जाती या नष्ट हो जाती थी तो हुण्डी के धारक या आदेशक को उसका पूरा नुकसान उठाना पड़ता था।

हुण्डियों का उद्देश्य कुछ भी हो अर्थात् भले ही वे रकम भेजने के लिए प्रयुक्त होती हों या ऋण प्राप्त करने के लिए किंतु इन्हें एकरूपता दिखाई पड़ती थी वह यह है कि हस्तांतरित हो सकती थी। इनको खरीदा या बेचा जा सकता था तथा आदेशित तक पहुंचने तक इसे कई लोगों द्वारा वहन किया जा सकता था। हुण्डियों की एक अन्य विशेषता थी अनुमोदन प्रणाली, जिसके अंतर्गत प्रत्येक हुण्डी विक्रेता, आदेशित द्वारा हुण्डी को अस्वीकार करने की स्थिति में अगले खरीदार को मूलधन अदा करने का लिखित वचन देता था।

17वीं शताब्दी में भारतीय वाणिज्य के विकसित स्वरूप की पुष्टि एक सुसंगठित बीमा-प्रणाली की उपस्थिति में होती है। बीमा प्रणाली के संबंध में हमारे मुख्य स्रोत ग्रंथ सुजान राय कृत 'खुलासत-उत-तारीख' तथा 'इंग्लिश फैक्ट्री रिकार्ड्स' हैं। बीमा मुख्यतः सर्राफों द्वारा ही किया जाता था तथा बीमा वस्तुओं की निकासी व जहाजों पर किया जाता था। घरों का बीमा किए जाने तथा जीवन बीमा किये जाने के साक्ष्य प्राप्त नहीं होते। निकासी की वस्तुओं का बीमा दो प्रकार का होता था। एक तरीका यह था कि बीमा करने वाले समान का दायित्व स्वयं लेते थे और स्वयं ही उसको पहुंचाने की व्यवस्था करता था। दूसरे तरीके के अनुसार बीमा करने वाले पर वस्तुओं को स्वयं वहन करने आदि का दायित्व नहीं रहता था। बीमे की पद्धति व्यापक होने के कारण बीमे का शुल्क अत्यंत अल्प मात्रा में होता था।

इसमें कोई संशय नहीं कि मुगल काल में भारत में बैंक में रूपया जमा करने की व्यवस्था किसी न किसी रूप में विद्यमान नहीं होगी। कुछ ऐसे सर्राफ अवश्य थे जिनके माध्यम से यहां रूपया जमा किया जाता था तथा ऋण दिया जाता था। इंग्लिश फैक्ट्री रिकार्ड्स से ज्ञात होता है कि प्रारंभ में अंग्रेज अपनी सारी रकम सर्राफ के यहां जमा कर देते थे यद्यपि बाद में यह प्रथा बंद कर दी गई। सर्राफ जमा की रकम को अधिक ब्याज पर चढ़ा कर ऋण लगा देते थे। मुगल काल में भारत में सूदखोरी के विकास का यही मुख्य कारण था। सर्राफों के अतिरिक्त ऐसे महाजन तथा साहूकार भी थे जिनका व्यवसाय ही लेन देन था सूदखोरी में थी।¹⁰

निष्कर्ष :

मुगल भारत में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ जो मुद्रा पर आधारित थी, जिसमें हुण्डी, बीमा, बैंकिंग आदि सभी विकसित वाणिज्य पद्धतियां विद्यमान थी, किंतु इन सब विशिष्टताओं के बावजूद भी भारत में पूंजीवादी का विकास नहीं हो पाया, जिसका कारण यह था कि वाणिज्य अपरिवर्तित हस्तशिल्प उत्पादन पर आधारित था। बैंकर की पूंजी के उत्पादन की प्रक्रिया पर कोई नियंत्रण नहीं था। इस प्रकार वित्तीय संगठन की सुविकसित प्रणाली भी विद्यमान थी।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ० निकिता, मुगलकाल में नगरीकरण, पृ० सं०-106.
2. सतीश चन्द्रा, सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत में मुद्रा अर्थव्यवस्था, मध्यकालीन भारत, अंक-2, सम्पा० इरफान हबीब, 1983.
3. चोपड़ा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, दिल्ली, 1987.
4. फ्रांसिसको पेलसार्ट, जहाँगीरकालीन भारत, अनु० बी० एल० मदानी, जयपुर, 1996.
5. अली० ए० युसूफ, मेडिएवल इंडिया, सोशलएण्ड इकोनॉमिक कंडीशन, लंदन, 1932.
6. जे० एन० सरकार, मुगल इकोनॉमी, आर्गेनाइजेशन एण्ड बैंकिंग, कलकत्ता, 1987.
7. जे० एन० सरकार, फॉल ऑफ दि मुगल एम्पायर, भाग-3, कलकत्ता, 1933.
8. इलियट एण्ड डाउसन, दि हिस्ट्री ऑफ इंडिया इज टोज्ज वाय इट्स ओन हिस्टोरियन, भाग-3, लंदन, 1887.
9. जे० एन० सरकार, स्टडीज इन इकोनॉमिक लाइफ इन मुगल इंडिया, दिल्ली, 1975.
10. अबुल फजल, आइन-ए-अकबरी, अनु० अंग्रेजी, भाग-1, एच० ब्लाकमैन, 1977, दिल्ली।

